International Research Journal of Human Resources and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor- 5.414, Volume 4, Issue 10, October 2017
Website- www.aarf.asia, **Email** : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

भारतीय समाज एवं संस्कृति का समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. राहुल
पी.एच.डी. (समाजशास्त्र)

समाज की मानक अवधारणा **मेकाइवर एवं पेज**[1] ने प्रस्तुत करते हुए इसे रीतियों, कार्य प्रणालियों, अधिकार एवं पारस्परिक सहायता, अनेक समूहों तथा विभागों, मानव व्यवहार के नियंत्रणों तथा स्वतंत्रताओं की एक व्यवस्था के रूप में स्वीकारा है। **एली चिनाय**[2] ने समाज को उसकी प्रमुख संस्थाओं – पारिवारिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक आदि के रूप में विश्लेषित किया है। समाजशास्त्रीय विश्लेषण के अन्तर्गत समाज में संस्थाओं की संरचना तथा सामाजिक सम्बन्धों की संरचना – इन दोनों प्रारूपों में समाज का विश्लेषण समन्वित प्रयास होगा।

समाज की एक जीवन-शैली (Way of life) होती है जिसे संस्कृति कहते हैं। समाज को यदि निचोड़ा जाय तो उसमें से व्यक्ति अभिभूत होता है। यदि व्यक्ति को भी पुनः निचोड़ा जाय तो उसमें से प्रस्थिति एवं भूमिका का आविर्भाव होता है। प्रस्थिति की व्यवस्था एवं भूमिका का निर्वहन कैसे किया जाय, यह संस्कृति तय करती है। संस्कृति की संरचना को निर्मित करने वाले प्रमुख उपादान हैं – संस्कृति तत्त्व, संस्कृति, सकुल, संस्कृति प्रतिमान एवं संस्कृति क्षेत्र। समाज की अभिव्यक्ति संस्कृति के द्वारा होती है।

कुछ विचारकों ने संस्कृति को पूर्णतः, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों-धर्म, दर्शन, वैधानिक व्यवस्था, साहित्य, कला, संगीत आदि संदर्भों में विश्लेषित किया है। कभी-कभी संस्कृति की अवधारणा का विस्तार शासक वर्ग के रीति-रिवाजों, तौर-तरीकों में परिवर्तन के विश्लेषण करने के आधार पर भी किया गया है। इन संदर्भों में इतिहास की व्याख्या संस्कृति के उपर्युक्त सीमित अर्थ पर आधारित व्याख्या है अथवा होनी चाहिए। किन्तु संस्कृति का व्यापक अर्थ है, समस्त व्यक्तियों की मूलभूत जीवन शैली का संश्लेषण। इस दृष्टिकोण के आधार पर इतिहास विशिष्ट नामों, उत्तराधिकारियों, आरोपित युद्धों का विश्लेषण ही नहीं है, बल्कि कोशाम्बी की शब्दावली में इतिहास उत्पादन के साधनों एवं सम्बन्धों में उत्तरोत्तर परिवर्तनों की काल क्रमानुसार व्याख्या है।

भारतीय समाज एवं संस्कृति के विश्लेषण के आधार पर एवं स्तर क्या हैं? भारतीय समाज एवं संस्कृति की समरसता एवं विभिन्नता के पहलू क्या हैं? भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं आधुनिकीकरण का क्या स्वरूप हैं? क्या आधुनिकीकरण की अवधारणा भारतीय सामाजिक गतिशीलता को अभिव्यक्त

1. Maciver & Page : Society, Macmillon & Co, London, 1950, P. 5
2. Ely Chinoy : Society, P. 28

© **Associated Asia Research Foundation (AARF)**
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

करने में समर्थ हैं? क्या भारतीय समाज तथा संस्कृति के अध्ययन का कोई अलग उपागम है, जो अन्य समाजों के अध्ययन के उपागमों से भिन्न अथवा विशिष्ट है? प्रस्तुत लेख में उपर्युक्त संदर्भ में भारतीय समाज व संस्कृति का विश्लेषण किया गया है।

सांस्कृतिक इतिहास के लिए भारत के ऋणी हैं। (कोशाम्बी)। बाशम ने प्राचीन भारतीय सभ्यता को मिस्र, मेसोपोटामिया एवं ग्रीक सभ्यता से इस आधार पर पृथक किया है कि इसकी परम्पराएँ आधुनिक काल तक बिना अन्तराल के निरन्तर, सतत तथा सुरक्षित हैं।

किसी समाज की संरचना उसके आधारभूत तत्त्वों से निर्मित होती है। भारत में भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विभाजन के इतने आधार हैं कि इसे एक राष्ट्रीय देश की अपेक्षा एक महाद्वीप समझना उचित होगा।[3] भारत के मुख्य प्राकृतिक भाग हैं - हिमालय पर्वत (उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र), सिन्धु-गंगा का मैदान (उत्तरी मैदानी क्षेत्र), दक्षिणी पठार तथा समुद्रीतटीय मैदान। इन प्राकृतिक प्रखण्ड़ों का सामाजिक जीवन यहाँ की भौगोलिक स्थिति से प्रभावित होता है।

भारतीय राष्ट्रीयता भाषायी क्षेत्रवाद से प्रभावित है। भाषायी क्षेत्रवाद विभाजन प्रवृत्तियाँ उत्पन्न करता है। भारतीय सामाजिक संरचना का भाषायी आधार बहुलक है। भाषायी पार्थक्य का कारण सांस्कृतिक आर्थिक है। भाषायी सर्वेक्षण के अनुसार भारत में लगभग 189 भाषायें तथा 544 बोलियाँ हैं, जिन्हें दो विस्तृत भाषायी वर्गों में रखा जा सकता है : (क) द्रविड़ भाषायें जिसके अन्तर्गत तमिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम भाषी लाग हैं, तथाा (ख) इन्डो आर्यन भाषायें जिसके अन्तर्गत प्राकृत भाषा के समष्टि स्वरूप हैं। इसकी परिणित भाषायें हैं - संस्कृत, पालि, गंगा दोआब की भाषायें, जैसे - मगधी, उड़िया, मराठी, मध्य भारत की भाषायें, जैसे - राजस्थानी, पंजाबी, इत्यादि। मध्यकालीन भारत में उर्दू एवं खड़ी बोली का प्रचलन हुआ, जिसका परिष्कृत रूप वर्तमान हिन्दी के रूप में कालान्तर में विकसित हुआ है।

भारत का दार्शनिक आधार विभिन्न संरचनात्मक स्तरों पर भिन्न-भिन्न है। जनजातीय समाज में जादू, टोना, टोटम तथा अति सरल जनरीतियाँ दार्शनिक आधार बनी हुई हैं। हालाँकि ईसाई मिशनरियों ने उनमें पाश्चात्य विचारधारा का सूत्रपात किया है, किन्तु उनका दार्शनिक आधार अधिकांशतः परम्परायें एवं लोकरीतियाँ ही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में भी जनरीतियाँ ही मुख्यतया परिस्थिति की परिभाषा करती हैं। नगरीय स्तर पर यूरोपीय, अमरीकी दार्शनिक प्रवृत्तियों का प्रचलन है। ग्रामीण स्तर पर लघु परम्परा तथा नगरीय स्तर पर बृहद परम्परा तथा पाश्चात्य दार्शनिक प्रवृत्तियों से निर्मित नैतिक व्यवस्था में संघर्ष भारतीय सामाजिक संरचना के प्रतिस्पर्द्धा की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हैं।

भारतीय परम्परागत सामाजिक संरचना में व्यक्ति के जीवन का आधार धर्म है।धर्म नैतिक मूल्य व्यवस्था है। धर्मानुसार व्यक्ति की प्रस्थिति तथा भूमिका निर्धारित होती है जो वर्णाश्रम की व्यवस्था पर आधारित है। जीवन का लक्ष्य सामाजिक दायित्व की पूर्ति करते हुए अर्थात् पुरुषार्थ का पालन करते हुए मोक्ष प्राप्त करना है। मनु ने भारतीय परम्परागत व्यवस्था की रूपरेखा प्रस्तावित की है, जिसकी आधारशिला लोकातीत मूल्यों अर्थात् धर्म पर रखी गयी है। श्रम विभाजन पर आधारित है।

---

[3]. Kosambi, D. D. : The CultureAnd Civilisation ofAncient India in Historical Outline, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., Delhi, 1976, (Fourth ed.), P. 10

भारतीय सामाजिक संरचना क्षेत्रीय या स्थानीय विशेषताओं के अनुसार जातियों में विभक्त है। जाति व्यवस्था सामाजिक पदक्रम में संरचित वह व्यवस्था है, जिसके माध्यम से दूसरों को बिना गुलाम बनाये उनके श्रम का लाभ उठाया जा सकता है। कोशाम्बी[4] ने उत्पादन के प्राचीन स्तर पर जाति को एक वर्ग के रूप में स्वीकारा है। एक समूह के रूप में जाति वंश परम्परागत एवं सजातीय विवाह पर आधारित अमुक्त व्यवस्था है। हिन्दू जाति व्यवस्था की संरचना पर ही मुस्लिम, ईसाई, सिक्ख समुदायों में भी जाति समूहीकरण परिलक्षित होता है। जातीय परिप्रेक्ष्य में भारतीय सामाजिक संरचना का विश्लेषण हट्टन[5], घूरिये[6], श्रीनिवास[7], बाँगले[8], चौहान[9], लेविस[10], कपाडिया[11], चन्द्रशेखरैया[12], सांगवे[13], मजूमदार[14], प्रभु[15], लोहिया[16], दामले[17], देसाई[18], समेत अनेक समाज वैज्ञानिकों ने किया है।

भारतीय समाज में शक्ति संरचना पिरामीड के समान है, जिसके निचले स्तर पर ग्रामीण शक्ति संरचना एवं नेतृत्व है। ग्रामीण शक्ति संरचना ग्राम पंचायत, जाति पंचायत, न्याय पंचायत, विकास खण्ड समितियों में प्रतिनिधित्व एवं प्रत्यक्ष अथवा प्रच्छन्न नेतृत्व के आधार पर अभिव्यक्त होती है। दूसरे स्तर – मध्य स्थिति शक्ति संरचना के अन्तर्गत लोकसभा तथा विधानसभा के जनप्रतिनिधि तथा भारतीय कर्मचारी तंत्र की शक्ति सम्मिलित है। शक्ति संरचना के तीसरा स्तर – शीर्ष स्तर पर व्यापक नीति निर्माण करने वाला नेतृत्व वर्ग है, जिसमें मंत्रीगण, उच्च राजकीय पदाधिकारियों का समूह, उच्च सैन्य अधिकारियों तथा उच्च उद्योगपतियों का समूह सम्मिलित है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जनतांत्रिक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप भारत का पुराना संभ्रान्त जन पीछे हटता जा रहा है और उसकी जगह नये संभ्रान्त

---

4. Kosambi, D. D. : Op, Cit., P. 50
5. Hutton, J. H. : Caste in India, London, 1955
6. Ghurye, G. S. : (a) Caste, ClassAnd Occupation; (b) CasteAnd Races in India, 1932
7. Srinivas, M. N. : "Caste in Modern India", ed., Myron Weiner, The Civilization of India, Vol. II, Chicago, Illinois, 1961.
8. Bongle, C. : The EssenseAnd Reality of the Caste System, DumontAnd Pocock, Contribution to Indian Sociology, No. II, 1958.
9. Chauhan, B. R. : The Nature of CasteAnd Sub Caste in India, Sociological Bulletin, Vol. XV, No. 1, Mar. 1966
10. Lewis, Oscar : Village Life in Northern India, Vintage Bookis, Toronto, Canada, 1958.
11. Kapadia, K. M. : "Caste in Trasition", Sociological Bulletin, Vol. XI, No. 1-2, March, Sept. 1962.
12. Chandrashekharaiyah, K. : "Mobility Patterns within the Caste System", Sociological Bulletin, Vol. XI, No. 1-2, MarchAnd Sept. 1972
13. Sangave, V.A. : "Changing Patterns of Caste Organization in Kolhapur City", Sociological Bulletin, Vol. XI, No. 1-2, MarchAnd Sept. 1962
14. Majumdar, D. N. (ed.) : Rural Profiles, CasteAnd Communication in Indian Village.
15. Prabhu, P. H. : Hindu Social Organization, Popular Prakashan, Bombay, 1940
16. Lohia, Ram Manohar : Caste System, 1964.
17. Damle, Y. B. : "Reference Group Theory with Regard to Mobility in Caste" ed., James Silverberg, Social Mobility in the Caste System in India, The Hague; Mouton Publishers, 1968.
18. Desai,A. R. : Rural Sociology in India, Popular Prakashan, Bombay, 1969.

जन उभर रहे हैं, जिसमें पिछड़ी एवं निचली जातियों के सदस्य तथा मध्यम वर्ग के व्यक्ति भी सम्मिलित हैं।

भारत की अर्थव्यवस्था का विवेचन दो स्तरों पर किया गया है – ग्रामीण अर्थव्यवस्था तथा नगरीय औद्योगिक अर्थव्यवस्था। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में भूमि उत्पादन का मौलिक साधन है। ब्रिटिश पूर्व भारत में कृषि मुख्यत: ग्रामीण जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु की जाती थी। यह भरण पोषणात्मक ग्रामीण कृषि अर्थव्यवस्था ब्रिटिश युग में बाजार अर्थ व्यवस्था में परिवर्तित हो गयी। स्वतंत्र भारत में सामुदायिक विकास योजनाओं, आधुनिक प्रविधि की, हरित क्रान्ति आदि के परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन का परम्परागत स्वरूप परिवर्तित हुआ है।

लूई ड्यूमा[19] ने भारतीय परम्परात्मक मूल्य एवं पाश्चात्य मूल्यों में विभिन्नता का विश्लेषण किया है। भारतीय मूल्य के प्रबल तत्त्व हैं – श्रेणीक्रम, समग्रता, सातत्य एवं श्रेयसता, जबकि पाश्चात्य मूल्य के प्रधान तत्त्व हैं – साम्यता, वैयक्तिकता, सांस्कृतिक समरूपता तथा विचारशक्ति। उपर्युक्त मूल्य सम्प्रत्ययों पर आधारित सामाजिक व्यवस्था भारतीय समाज की विशिष्ट प्रकृति का बोध कराती हैं। परम्परागत पाश्चात्य संस्कृति से इसकी भिन्नता इसकी विशिष्ट सामाजिक विरासत, अस्तित्ववादी स्थिति तथा ऐतिहासिक परिस्थिति पर भी आधारित है।

हिन्दू दर्शन का नियामक आधार है – व्यवस्था एवं परिवर्तन। हिन्दू सांस्कृतिक परम्परा में व्यवस्था का स्वरूप रेडफील्ड एवं सिंगर[20] के शब्दों में उसके सामाजिक संगठन के सांस्कृतिक संरचना एवं सांस्कृतिक क्रियाकलापों के आधार पर देखा जा सकता है। भारतीय संदर्भ में व्यवस्था का नियामक आधार है श्रेणीक्रम की व्यवस्था। श्रेणीक्रम के सम्प्रत्यय के अवलोकन क्षेत्र हैं – भूमि का संस्थाकरण तथा वर्ण एवं जाति के रूप में उसका वैधीकरण, लक्ष्योन्मुखता के क्षेत्र अथवा पुरुषार्थ का सिद्धान्त, करिश्मा अथवा गुणों का सामूहिक एवं वैयक्तिक विशेषताओं के रूप में वर्गीकरण, जीवन के विविध स्तर एवं मूल्य सम्बद्धता अथवा आश्रम व्यवस्था तथा परिवर्तनशील सांस्कृतिक चक्र। इसके अतिरिक्त श्रेणीक्रम का सम्प्रत्यय आध्यात्मिक तत्त्वों एवं घटनाओं के उद्विकास सम्बन्धी हिन्दू दर्शन में मिलता है, जिसके अनुसार आध्यात्म का संरूपण सर्वप्रथम उपनिषद में हुआ। तत्पश्चात् सांख्य दार्शनिक व्यवस्था के आधार पर विस्तृत किया गया। उपनिषद एवं तत्पश्चात् सांख्य हिन्दू दर्शन के आधार पर मानसिक उद्विकास का प्रथम स्तर है, बुद्धि अथवा मानसिक चेतना का विकास, दूसरा स्तर है अहम् के प्रति चेतनशीलता, तीसरा स्तर है मन का विकास तथा चतुर्थ स्तर है पुरुष अर्थात् सर्वोच्च रचनात्मक शक्ति का विकास।

सम्पूर्णता का सम्प्रत्यय (जिसका अभ्युदय श्रेणीक्रम के सम्प्रत्यय से हुआ है) भारतीय सामाजिक व्यवस्था में व्यक्त की महत्ता को पश्चिमी दृष्टिकोण के अनुरूप स्वीकार नही करता। सम्पूर्णता का दर्शन व्यक्ति एवं समूह के सम्बन्धों के अन्तर्गत समूह (संघ अथवा समुदाय) की शक्ति की महत्ता को स्वीकारते हुए समाज के प्रति व्यक्ति की भूमिका एवं दायित्व को प्रधानता देता है। व्यक्ति की अपेक्षा समूह का महत्त्व परम्परागत भारतीय सामाजिक संरचना के प्रत्येक स्तर परिवार, ग्राम, समुदाय, जाति,

---

19. Dumount, Louis, : "The Modern conception of the Individual", Contribution to Indian Sociology, No. VIII, 1964, pp. 13-61

20. Singer, Milton (ed.) Traditional India, StructureAnd Change, Philadelphia, 1959, pp. IX-XII.

राजनीतिक क्षेत्र अथवा राष्ट्र में परिलक्षित होता है। ड्यूमा के अनुसार आधुनिक व्यक्ति दो स्वरूपों का प्रतिनिधित्व करता है - (क) नियामक आधार के रूप में, (ख) संस्था के प्रतिनिधि के रूप में। नियामक आधार के रूप में भारतीय संदर्भ में व्यक्ति के स्थान पर व्यवस्था के सम्पूर्णतावादी दर्शन अथवा धर्म प्रमुख हो जाते हैं। सम्पूर्णता का सम्प्रत्यय विभिन्न मूल्यात्मक मान्यताओं जो (यद्यपि प्रत्यक्षत: विरोधी हैं तथापि सांस्कृतिक प्रतीकात्मकता के उच्च स्तर पर सामंजस्यपूर्ण हैं) के आधार पर होता है। यह उच्च प्रतीकात्मकता, शाश्वतता, निरंतरता, निम्न एवं उच्च की एकता, आत्मा एवं परमात्मा, परिवर्तन एवं परिवर्तनविहीनता, निर्माण एवं संहार, कर्म तथा मोक्ष आदि के प्रति विश्वास पर आधारित है।

भारतीय समाज की गत्यात्मकता को पुनर्जागरण एवं आधुनिकीकरण के आधार पर विश्लेषित किया गया है। पुनर्जागरण का अर्थ है प्राचीन शास्त्रीय ज्ञान की नवीन संदर्भ में पुनर्व्याख्या। भारत में पुनर्जागरण मध्यकाल एवं आधुनिक काल के बीच की संधि है। ब्रिटिश शासन के सम्पर्क में आने के पश्चात् भारत में नवीन जागरण आरम्भ होता है तथा विशिष्ट जन की संस्कृति विकसित होती है। विशिष्ट जन की संस्कृति के साथ भारत में पुनर्जागरण पश्चिमीकरण का पर्याय बन जाता है। ब्रिटिश शासन ने शासन पद्धति के साथ राजनैतिक संस्थाएँ भी स्थापित की।

भारतीय पुनर्जागरण का प्रथम चरण है बंगाल में सर्वप्रथम विवेकवाद एवं व्यक्तिवाद को स्वीकृति मिलना, जिसका श्रेय राजा राममोहन राय ने लिया। राजा राममोहन राय का विवेकवाद सामाजिक सत्ता (सामंतों) का विरोध करता है, धार्मिक सत्ता (उपनिषद, मध्ययुगीन कर्मकाण्ड, परम्पराओं एवं प्रथाओं) का विरोध करते हुए नये संदर्भ में उसकी व्याख्या करता है किन्तु राजनीतिक सत्ता का विरोध नहीं करता, बल्कि ब्रिटिश शासन को दैवी देन मान लेता है। उन्होंने सामाजिक सुधार की दिशा में दो कार्य किये-तत्कालीन धार्मिक रूढ़ियों की आलोचना तथा ब्रह्म समाज द्वारा नये धार्मिक विचारों का सूत्रपात।

भारतीय पुनर्जागरण का द्वितीय चरण तब आता है जब अभिजातीयवर्गीय राजनीति के समक्ष राष्ट्रवाद की समस्या आयी। दयानन्द ने राममोहन राय के प्रत्युत्तर में सांस्कृतिक पुनरुत्थान का प्रादुर्भाव किया, विशिष्ट जन की संस्कृति के विरोध में सामान्य जन की संस्कृति का प्रादुर्भाव किया। इस काल में पुनर्जागरण के अन्तर्गत राजनीति सत्ता का विरोध आरम्भ होता है।

भारतीय पुनर्जागरण का तृतीय चरण विवेकानन्द के साथ आरम्भ होता है जिन्होंने अतीत के प्रति गौरव पैदा करने की अंधविश्वास की प्रतिक्रिया का पहल किया। अद्वैत दर्शन, अद्वैत वेदान्तवाद की उपलब्धि विवेकानन्द के माध्यम से होती है एवं भारतीय पुनर्जागरण लौकिकता एवं सामान्य जन के साथ जुड़ता है। विवेकानन्द के साथ पुनर्जागरण को भारतीय धरातल प्रदान होता है जिसमें ब्रिटिश शासन की अनिवार्यता समाप्त हो जाती है बल्कि उसके स्थान पर ब्रिटिश शासन की जायज-नाजायज प्रकृति, उसके अस्तित्व-अनस्तित्व पर सवाल उठ खड़ा होता है।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक राष्ट्रवाद, समाज सुधार, विदेशी साम्राज्यवाद विरोध, स्वदेशी एवं स्वराज्य के आदर्श पर भारत में नवीन राजनीतिक पुनर्जागरण का प्रादुर्भाव होता है। नरम दल एवं गरम दल की राजनीति में सामाजिक प्रश्न एवं राजनीतिक प्रश्न की प्राथमिकता का विवाद आरम्भ होता है।धर्म की पुन: नवीन व्याख्या होती है। तिलक ने गीता की उपयोगितावादी लौकिक व्याख्या प्रारम्भ किया, साधन के स्थान पर साध्य को प्रमुखता दिया तथा सन्यास की मान्यताओं के स्थान पर कर्मयोग की मान्यताओं की स्थापना किया। इसी आधार पर दुर्गा, असुरनिकन्दनी का समस्त स्वरूप भारत माँ के रूप

में प्रतिस्थापित होता है जिसकी पृष्ठभूमि में रामप्रसाद बिस्मिल, भगत सिंह आदि गीता लेकर बलिदान दे देते हैं। भारतीयकरण के साथ पुनर्जागरण का तृतीय चरण भारत में पुनर्जागरण के अन्तिम चरण के रूप में समाप्त होता है।

भारतीय संदर्भ में आधुनिकीकरण का विश्लेषण करते हुए योगेन्द्र सिंह[21] ने इसे संरचनात्मक असंगतियों पर आधारित बताया है, जैसे बिना नागरिक संस्कृति (शिक्षा) के प्रसार के जनतांत्रीकरण, सार्वभौमिक मूल्यों के प्रतिबद्धता के बिना नौकरशाहीकरण, समानुपातिक श्रोतों के विकास के बिना जन सहभागिता एवं महत्त्वकांक्षाओं[22] तथा विभाजक न्याय[23] में वृद्धि एवं कल्याणकारी आदर्शों के प्रसार के बिना इसका मौखिकीकरण[24], औद्योगिकीकरण के बिना अतिनगरीकरण[25] तथा स्तरीकरण की व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन के बिना आधुनिकीकरण[26] इत्यादि।

लूई ड्यूमा[27] ने भारतीय गाँव के अध्ययन में सर्वप्रथम उपागम का प्रश्न उठाया। यह प्रश्न समाज वैज्ञानिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि क्या भारतीय समाज एवं संस्कृति के अध्ययन का कोई अलग उपागम है जो अन्य समाजों के अध्ययन के उपागमों से भिन्न व विशिष्ट है? समाजशास्त्र एक सामान्य विज्ञान है तथा पद्धति शास्त्रीय दृष्टि से इसके अन्तर्गत सभी समाजों के अध्ययन हेतु विशिष्टताओं को संश्लेषित करते हुए एक सामान्य उपागम की आवश्यकता है। ड्यूमा के अनुसार भारतीय गाँव के अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि उसे भारतीय परम्परा से जोड़ें। समन्वय का यह क्रम भारत की वृहद परम्परा के आधार पर किया जा सकता है।

भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के आधार पर सामाजिक संरचना की गत्यात्मकता के विश्लेषण सम्बन्धी प्रमुख उपागम हैं : संरचनावादी उपागम, उद्विकासवादी उपागम तथा मार्क्सवादी उपागम। संरचनावादी उपागम के अन्तर्गत आधुनिकीकरण को कुछ चुने हुए सामाजिक अथवा नियामक परिवर्त्यों के आधार पर विश्लेषित किया गया है, जैसे सामाजिक गतिशीलीकरण[28], संचार एवं सम्प्रेषण का विकास[29], जनतांत्रिक राजनीतिक संस्थाओं एवं मूल्यों का विकास[30], आधुनिक नैतिकता एवं नियामकों का विकास[31], समाज के प्रौद्योगिक एवं आर्थिक श्रोतों का विकास[32], सामाजिक व्यवस्था के अंगों की

---

21. Singh, Yogender, op. cit., pp. 210.
22. Weiner, Myron : The Politics of Scarcity, Chicago; University of chicago Press, 1962.
23. Myrdal, Gunar : Supra, pp. 278
24. Eisenstadt, S. N. : "The Development of Socio Political CentresAt the Second Stage of Modernization,A ComparativeAnalysis of Two Types", International Journal of Comparative Sociology, Vol. VII, No. 1-2, March 1966, P. 125
25. Sovani, N. V. : UrbanizationAnd Urban India,Asia Publishing House, Bombay, 1966, pp. 1-13
26. MyrdalAnd Horowitz : Three Worlds of Development, Oxford University Press, New York, 1966.
27. Dumout, Louis : Homo Hierarchicus, 1968.
28. Deutsch, Karl W. " "Social MobilizationAnd Political Development", TheAmerican Political Science Review, Vol. LV, No. 3, 1961.
29. Learner & Schramm (ed.) : ComunicationAnd Change in the Developing Countries, Honolulu East West Centre Press, 1967.
30. Apter, David : Polics of Modernization, Op. Cit. 1965
31. Danfield, Edward C. : The Moral Basis ofA Backward Society, Glencoe Illinois : The Free Press, 1958.

सांस्कृतिक एवं संरचनात्मक स्वायतता[33] की विद्यमानता के संदर्भ में समाज की आरम्भिक अवस्था[34] में परिवर्तन का विश्लेषण, इत्यादि।

मार्क्सवादी (द्वन्द्वात्मक) उपागम के अन्तर्गत आधुनिकीकरण के लिए अनिवार्य शर्त है समाज के स्थापित राजनीति, आर्थिक एवं संरचनात्मक स्वरूपों का विनष्टीकरण। इस प्रक्रिया में वर्ग संघर्ष अनिवार्य दशा है। आधुनिकीकरण का सम्प्रत्यय इस प्रवेशविधि के अन्तर्गत राष्ट्र में स्तरीकरण की व्यवस्था, सम्पत्ति पर स्वामित्व तथा उत्पादन के श्रोतों पर अधिपत्य में परिवर्तन[35] के आधार पर विश्लेषित किया गया है न कि मनोवैज्ञानिक एवं नियामक परिवर्त्यों जैसे अर्जनोन्मुखता, मनोवैज्ञानिक गतिशीलता, तार्किक सुखवाद आदि के आधार पर। उद्विकास की प्रक्रिया में बाधक तत्त्व संरचनात्मक विनष्टीकरण उत्पन्न करते हैं। बक एवं जैकबसन[36] ने भारतीय संदर्भ में यह विश्लेषित किय कि औपनिवेशिक राष्ट्र होने की वजह से यहाँ नौकरशाही, जनतांत्रिक संघ तथा सामान्यीकृत सार्वभौम मूल्य का विकास हुआ किन्तु संचार, नातेदारी, प्रौद्योगिकी, सामाजिक स्तरीकरण, मुद्रा एवं बाजार संगठन में विकास नहीं हुआ।

इन विविध उपागमों पर आधारित अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष भारतीय समाज संरचना एवं संस्कृति के बहुआयामी एवं विपरीतार्थक साक्ष्यों की पुष्टि करते हैं। उदाहरणार्थ भारतीय वैदिक परम्परा का एक पहलू यह है कि उसमें मद्यपान वर्जित था जबकि दूसरा पहलू यह भी है कि सोमरस पान प्रचलित था। भारतीय सांस्कृतिक मूल्य की विडम्बना यह है कि इसके आदर्श प्रारूप एवं भौतिक यथार्थवादी प्रारूप में विरोधाभास परिलक्षित होता है। निष्फल कर्म अर्थात् लक्ष्य प्राप्ति की कामना के बिना क्रिया करते रहना यदि इसका आदर्श है तो दूसरी ओर इसका ऐतिहासिक भौतिकवाद है अचल सम्पत्ति (भूमि) एवं सत्ता के लिए महाभारत का युद्ध। राधाकमल मुखर्जी[37] ने यह निष्कर्ष प्रतिपादित किया कि भारतीय सभ्यता युगकाल से मानवीय मिथकों – धर्म राज्य का राजनीतिक मिथक, चातुरवर्णम्यं, वर्ण संस्कार एवं कलियुग का सामाजिक मिथक, अवतारों का धार्मिक मिथक, दायित्व एवं बलिदान (त्याग) का नैतिक मिथक, ज्ञान, कर्म तथा भक्ति की त्रयी जीवन शैली के आध्यात्मिक मिथक का संवहन करता रहा है।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट है कि पद्धतिशास्त्रीय दृष्टि से अध्येता के समक्ष सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि विभिन्न प्रवेश विधियों, दृष्टिकोणों एवं उपागमों के बीच किस तरह वैषयिक एवं वैज्ञानिक मान्यता व सामंजस्य स्थापित किया जाय। भौतिक विज्ञानों की अवधारणाएँ कृत्रिम हैं, इसलिए इन विज्ञानों में सैद्धान्तिक विकास की स्थिति भी परिवर्तनशील है। इसका उदाहरण भौतिक विज्ञान के अनिश्चितता के नियम में परिलक्षित होता है।

आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धान्त में दो प्रमुख उपागम उल्लेखनीय हैं जो भारतीय समाज एवं संस्कृति के अध्ययन एवं विश्लेषण को समीचीन पद्धति की ओर ले जा सकती है :

---

32. Marian J. Levy : ModernizationAnd the Structure of Society, Princeton University Press, 1968.

33. Eisenstadt, Supra.

34. Kuznets, S. Moore & Spengler (ed.) : Economic Growth, Brazil, IndianAnd Japan, Durham N. C., Duke University Press, 1955

35. Mydral, Gunar :Asian Drama,An Inquiry into the Poverty of Nations, London; The Penguin Press, 1968.

36. BuckAnd Jackobson : "Social EvolutionAnd Structural FunctionalAnalysis :An Empirical Test",American Sociological Review, Vol. 33, June 1968.

37. Mukhrjee, Radha Kamal, op. cit., pp. 13-14.

(क) घटना विज्ञान का सम्प्रदाय तथा (ख) मानवशास्त्र का संरचनात्मक सम्प्रदाय। घटना विज्ञान के जन्मदाता हैं एडमंड हुसर्ल। इसे अन्य प्रवर्तक हैं अल्फ्रेड सूत्ज[38], गौफमैन[39], गारफिन्केल[40], डगलस[41], जिमरमैन एवं पोलनर[42] तथा गोल्डनर[43] इत्यादि। हुसर्ल की धारणा है कि समस्त ज्ञान हमारी चेतना में प्रतिबिंबित होता है जिसके द्वारा हम वाह्य संसार को जानते हैं। हम सारी दुनिया को नहीं जानते बल्कि सिर्फ उसे जानते हैं जो हमारी चेतना पर पड़ता है। सूत्ज ने यह विश्लेषित किया कि समाजवैज्ञानिकों द्वारा निर्मित विचार वस्तुत: व्यक्ति के दूसरे व्यक्तियों के साथ रहते हुए नित्य प्रति के जीवन में विकसित सामान्यज्ञान पर आधारित विचार हैं। सामान्य ज्ञान से सूत्ज का तात्पर्य उस संरचनात्मक व्यवस्था से है जिसके माध्यम से कर्ता सामाजिक पर्यावरण की विशिष्टता (प्रकाररोपण) की आकृति का निर्माण करता है। निर्माण व्यवस्था अन्त:आत्मपरक है तथा इसके तीन पहलू हैं - स्वरूपों का परस्पर सम्बन्ध सूचकता, ज्ञान का सामाजिक उद्भव तथा ज्ञान कासामाजिक वितरण। व्यक्ति किसी दी हुई संस्कृति में सीखता है तथा अपनी क्षमतानुसार प्रकाररोपण करता है। सूत्ज की दृष्टि में समाजशास्त्री अपनी वैज्ञानिक समस्या की आवश्यकताओं के अनुरूप अपने चेतन विश्व के दैनिक जीवन का अमूर्त प्रारूप निर्मित करता है। घटना विज्ञान का अतिस्वरूपण है लोकविधि विज्ञान। घटना विज्ञान स्व का अध्ययन करता है जबकि लोकविधि विज्ञान अन्त:क्रियाओं का अध्ययन करता है, उसमें भी आत्मपरक शब्द बोध काअध्ययन इसका मुख्य विषय है। गारफिन्केल ने इस लोकविधि विज्ञान क विकल्प स्वरूप नव अभ्यास ज्ञान का नाम प्रस्तावित कियाजिसकी विषय वस्तु यह ज्ञात करना है कि अनुभूति कैसे परिवर्तित हो जाती है? डगलस की धारणा है कि यदि हमारे दैनिक जीवन के प्रति बोध करने की बजाय वैज्ञानिक विश्लेषण का प्रतिरोपण समाजशास्त्र के अन्तर्गत किया जाय तो यह पद्धति शास्त्र दृष्टि से गलत होगा। नवघटना विज्ञान का केन्द्रीय बिन्दु है दैनिक क्रियाओं की प्रदर्शनपूर्ण व्याख्या करना। यह उपागम बहुत अंश तक प्रतीकात्मक उपागम का ऋणी है जिसका मूल अध्ययन वस्तु है भूमिका ग्रहण तथा भूमिका निर्माण के सम्प्रत्यय के सम्बन्धों का अध्ययन करना।

संरचनावादी उपागम पूँजीवादी एवं उपनिवेशवादी सैद्धान्तिक विश्लेषणों की आलोचना के रूप में ब्रिटेन में 1960 में सामाजिक मानवशास्त्र विशेषकर लीच एवं नीधम के कार्यों के माध्यम से विकसित हुआ। इस उपागम के प्रमुख प्रवर्तक हैं साउसर एवं जैकसन (भाषा विज्ञान के क्षेत्र में), बर्थेस (निदानकीय चिकित्सा के क्षेत्र में), प्रोप (लोक कथाओं के अध्ययन क्षेत्र में), लकान एवं लगाचे (मनोविश्लेषण के क्षेत्र में), फूको (विचारों के इतिहास में), गोडेलियर (मानवशास्त्र में) आदि। इसके दो प्रमुख प्रवर्तक हैं - लेवी स्ट्रास तथा अल्थूजर। लेवी स्ट्रास[44] ने सामाजिक संरचना का अर्थ है हस्तान्तरणों की वाक्य रचना। जो एक विपरीत स्थिति से दूसरी विपरीत स्थिति से गुजरती है। उसकी

---

38. Shultz,Alfred : Collected Papers I The Problem of Social Reality, 1962; Collected Papers II Studies in Social Theory, 1964; Collected Papers III Studies in Phenomenological Philosophy, 1966.
39. Goffman, Irving : (a) Behaviour in Public Places, 1965And (b) The Presentation of Self in Everyday Life, DoubledayAnchorbooks, 1959.
40. Garfinkel : Studies in Ethnomethodology, Prentice Hall, 1967.
41. Douglas, J. (ed), Understanding everyday life, RoutledgeAnd Kegan Paul, 1971.
42. Zimmerman & Pollner : "The Everyday WorldAsA Phenomenon"AnArticle in douglas Op. Cit
43. Gouldner,A. : The Coming Crisis of Western Sociology, Basic Books, 1970.
44. Levistrauss, Claude : StructuralAnthoropology, 1963, Basic Book, 1970.

दृष्टि में संरचना का अवलोकन एवं प्रत्यक्षीकरण नहीं किया जा सकता। संरचना का वास्तविक अस्तित्व है किन्तु तथ्य संग्रह के आधार पर संरचना को नहीं ढूँढ़ा जा सकता। उसकी दृष्टि में मानवशास्त्रियों एवं समाजशास्त्रियों का सबसे महत्त्वपूर्ण दायित्व है अनुसंधान के लिए चुनी गयी घटना के विश्लेषण के लिए उपयुक्त सम्प्रत्ययों को विकसित करना, न कि दूसरे विषयों की समरूपताओं पर आधारित रहना। उसकी दृष्टि में संरचना किसी एक उद्देश्य पर आधारित नहीं अपितु उद्देश्यों की श्रृंखलाओं के सम्बन्धों पर आधारित है। प्राचीन समाज में वे वैचारिकी अथवा नातेदारी प्रमुख भूमिका अदा कर सकती है। प्रत्येक की स्वतंत्र स्वायत्तता का परीक्षण होना चाहिए। उत्पादन का स्वरूप निम्नलिखित पाँच तत्त्वों के सम्मिश्रण के आधार पर विश्लेषित होना चाहिए :

1. प्रत्यक्ष उत्पादक - श्रम शक्ति
2. उत्पादन के साधन - उद्देश्य तथा औजार
3. कार्य नहीं करने वाला - उत्पादन की बचज का स्वायत्तीकरण करने वाला
4. सम्पत्ति सम्बद्धता - उत्पादन के सम्बन्ध
5. वास्तविक अथवा भौतिक स्वायत्तीकरण संबद्धता-उत्पादक शक्तियां

निष्कर्षत :

कहा जा सकता है कि भारतीय समाज एवं संस्कृति के विश्लेषण में आधुनिकीकरण का माडल उतना ही अपर्याप्त है जितना संरचनात्मक एवं मार्क्सवादी माडल। भारतीय समाज संरचना एवं संस्कृति के यथार्थ की विविध पर्तों को भूगर्भशास्त्रीय दृष्टिकोण के आधार पर उभारने, कार्य कारण की व्याख्या तथा सम्बन्धों का विश्लेषण करने के आधार पर वस्तुतः पूर्वाग्रहयुक्त विश्लेषणों की सीमाओं एवं अवरोधों को विनष्ट किया जा सकता है जो समाजवैज्ञानिकों को समाजशास्त्र एवं इतिहास के सम्बन्धों पर विचार करने के लिए बाधित करता है।